International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 22-10-2020; Accepted: 07-11-2020; Published: 25-11-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 6; 2020; Page No. 80-84

भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास 'बाँदी' में निहित आंचलिक जीवन का यथार्थ

डॉ. रंजना त्रिपाठी
श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के अंतर्गत कथात्मक विधा को उपन्यास ने व्यापकता, सामयिकता एवं समीचीनता प्रदान कर इसे समृद्ध किया है। उपन्यास विधा ने अपनी गहनता के साथ-साथ सहज सम्प्रेषणीयता के माध्यम से व्यक्ति एवं उसके सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक जीवन के आभ्यन्तरिक पक्षों को सूक्ष्मता से उकेरा है। तिलस्मी-ऐय्यारी, जासूसी, घटना प्रधान, ऐतिहासिक, सामाजिक-यथार्थवादी एवं आंचलिक उपन्यास आदि को इस विधा के विकास क्रम के रूप में देखा जा सकता है। कालखण्ड तथा उससे सम्पृक्त युगबोध इन उपन्यासों की विशेषता रही है। उपन्यास ने मानव जीवन के एक ऐसे मर्म सूत्र को पकड़ा जिसमें उसका सारा वैयक्तिक अस्तित्व, सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक विकास अन्तर्ग्रथित था। यहाँ हमारा सरोकार मुख्यतः आंचलिक उपन्यास से है। अतएव अध्ययन की दृष्टि से हम अपने को इसी तक सीमित रखेंगे।

जहां तक आंचलिक उपन्यास की बात है तो यह इसमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द का सीधा सम्बन्ध अंचल विशेष या ग्राम्य क्षेत्र से है। 'हिंदी साहित्य कोश' में कहा गया है कि "लेखक द्वारा अपनी रचना में 'आंचलिकता की सिद्धि के लिए स्थानीय दृश्यों, प्रकृति, जलवायु, त्योहार, लोकगीत, बातचीत का विशिष्ट ढंग, मुहावरे, लोकोक्तियां, भाषा के उच्चारण की विकृतियां, लोगों की स्वभावगत व व्यवहारगत विशेषताएं, उनका अपना रोमांस, नैतिक मान्यताओं आदि का समावेश बड़ी सतर्कता और सावधानी से किया जाता है।"वह सामान्य की जगह विशिष्ट होकर ही अपनी पहचान बना पाता है। विशिष्ट अंचल, विशिष्ट लोग, विशिष्ट संस्कृति, विशिष्ट भाषा, बोली, बानी आदि। सब कुछ विशिष्टता के लिए हुए। विशिष्ट साधारण हुआ नहीं कि आंचलिकता का मुहावरा टूटा। साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि ग्राम्य जीवन पर आधारित प्रत्येक उपन्यास आंचलिक नहीं होता। किसी उपन्यास में आंचलिकता की स्थिति उसे उसी प्रकार आंचलिक उपन्यास नहीं बनाती। जिस प्रकार किसी उपन्यास का राजनैतिक या मनोवैज्ञानिक का चित्रण उसे राजनीतिक या मनोवैज्ञानिक उपन्यास नहीं बनाता। राजनीतिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास पारिभाषिक संज्ञाएँ हैं, इसलिए किसी उपन्यास के सन्दर्भ में उनका प्रयोग करते समय हमें सतर्क होना चाहिए।

आंचलिक उपन्यास के सम्बन्ध में यह सभी स्वीकार करते हैं कि इसमें क्षेत्र विशेष का जीवन सत्य उद्घाटित होता है। कुछ आलोचकों का विचार है कि यह क्षेत्र विशेष गांव भी हो सकता है और शहर भी हो सकता है। किन्तु आंचलिक उपन्यासों को विशेष रूप से हिन्दी के देखते हुए यह कहा जा सकता है कि आंचलिकता का सम्बन्ध शहर से न होकर पिछड़े हुए ग्रामीण जीवन से ही है।

नगर और कस्बे पर भी आधारित बहुत उपन्यास मिल जाते हैं, जिनमें चरित्रों की अपेक्षा अंचल कहीं अधिक मुखर होता है। इसलिए ऐसी स्थिति में उसे भी आंचलिक माल लिया जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ० ज्ञानचन्द गुप्त का अभिमत है- "आंचलिक जीवन मुख्यतः ग्रामीण ही होता है और आंचिलक उपन्यास इस स्थानिक यथार्थ की सघनता एवं समग्रता के साथ अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर प्रस्तुत हुए हैं।" वस्तुतः नगर केन्द्रित उपन्यासों में लोक संस्कृति का स्पर्श नाम मात्र का होता है इसमें लोक जीवन का रंग, बिम्ब, प्रतीक और शब्द उसी रूप में आते हैं जिस रूप में किसी ड्राइंगरूम में कोई शो-पीस, इसके अतिरिक्त अपनी सांस्कृतिक विरासत से गहरे जुड़े आंचलिक उपन्यासों में नए मूल्यों और पुराने मूल्यों के और फिर मूल्य संक्रमण के जो विस्तृत चित्र मिलते हैं, वे नगर केन्द्रित उपन्यासों में कम क्योंकि औद्योगीकरण आदि के कारण नगरजीवन इस तरह के द्वंद्व को बहुत पहले झेल चुका है। आंचलिक उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ के चित्रण ग्राम केन्द्रित उपन्यासों की अपेक्षा अधिक सघन और गम्भीर है। विशेषतः लोक संस्कृति के आत्मीय रंगों से आंचलिक उपन्यास ग्रामकेन्द्रित उपन्यासों की तुलना में अधिक समृद्ध और आकर्षक बन गए हैं। जैसा कि डॉ. अमरनाथ ने लिखा है "स्पष्ट है कि 'अंचल' शब्द का अर्थ किसी ऐसे भूखंड, प्रांत या क्षेत्र विशेष से है, जिसकी अपनी एक विशेष भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, लोकजीवन, भाषा व समस्याएं हों। अपनी तमाम क्षेत्रीय विशेषताओं से उस अंचल विशेष का अपना एक अलग वैशिष्ट्य नज़र आये, जो दूसरे अंचलों से अलग पहचान बनाये।"

सुप्रसिद्ध प्रगतिशील कथाकार भरैव प्रसाद गुप्त के उपन्यास 'बांदी' का विवेचन यदि शोध विषय के अंतर्गत करें तो 1971 में प्रकाशित इस उपन्यास में लेखक ने जिस गाँव को केन्द्र बनाकर समाज की मूलस्थितियों का चित्रण किया है, वह तत्कालीन कथा साहित्य में चित्रित भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यासों में आंचलिकता के नाम से प्रचलित गांवों से नितांत विपरीत और उनके भिन्न प्रकार का है। इस गांव का केन्द्र एक बड़े जमींदार की हवेली हैं जहां गाँव के प्रभावशाली व्यक्ति, सरकारी अफसर नियमित रूप से दिन, सप्ताह अथवा महीने भर उपस्थित रहते हैं। गांव के किसानों की दिनचर्या और मूल जीवन क्रिया यहीं से परिचालित होती है। हवेली के स्वामी बड़े सरकार ने स्थानीय क्षेत्र के भीतर ही सामंती दबदबा कायम कर रखा है और जहां तक इसमें रहने वाले नौकरों का सम्बन्ध है बाहरी संसार के जीवन और रीति-रिवाज से उनका कोई सम्बन्ध नही हैं। सब दासियां बड़े सरकार की निजी सम्पत्ति के समान हैं, जिनकी निजी भावनाओं, आत्मसम्मान, मर्यादा की रक्षा किसी भी प्रकार सम्भव नहीं "दासियों को क्या मालूम कि भेड़िया मुहब्बत करने के लिए शिकार को मांद में नहीं बुलाता बल्कि भूख मिटाने के लिए लाता है, और यह भूख उसे रोज लगती है, और उसे रोज एक नया शिकार चाहिए।"

जब कोई दासी इस अमानवीयता और घुटन के वातावरण से बचने के लिए किसी नौकर से विवाह करना या भागना चाहे तो बड़े सरकार उसे जिन्दा नहीं छोड़ते। यह ऐसी बंद दुनिया हैं जिसमें घुटकर प्राण देना ही दास-दासियों की नियति है। सामान्य जनता पर भी बड़े सरकार का अत्याचार भूमि लेने के बदले और ऋण न चुका पाने की स्थिति में जमींदार के हाथों किसान की आगामी पीढ़ियां तक बंधुआ हो जाने के रूप में परिलक्षित होती हैं। यही नहीं जमींदार किसानों के शोषण के लिए प्रति वर्ष नये तरीके की खोज करते हैं यहां तक कि बदली हुई सामाजिक स्थिति में वह वणिकों को भी अवसर देता है कि वे भूमि के

लिए किसानों से स्पर्धा करें और किस प्रकार निजी आय में अधिकतम वृद्धि कर सकें।

एक अन्य पक्ष है शासन व्यवस्था का, प्रशासन के अधिकारी पुलिस अफसर तथा न्याय तंत्र से सम्बन्धित प्रायः सभी अधिकारी प्रत्येक कार्य में जमींदार का ही सहयोग करते हैं और बड़े पैमाने पर जब किसी नीति की सफलता के लिए सहयोग की आवश्यकता होती है तो उसकी पूर्ति का माध्यम भी जमींदार को ही बनाते हैं। उदाहरण के लिए फौज में नौजवानों की भर्ती के लिए स्वयं कलक्टर जमींदार की सहायता लेने जाता है और यह सुझाव देता है कि वे अपने पुत्र लल्लन को सेना में लेफ्टिनेन्ट का पद स्वीकार करने को राजी हो जाएं। कलक्टर के विचार में इससे न केवल सरकार के समर्थन में जमींदार का निजी सहयोग होगा, बल्कि जमींदार पुत्र के सेना में भर्ती होने से किसान नवयुवकों को भी भर्ती होने की प्रेरणा मिलेगी। कहना न होगा कि यदि शासन व्यवस्था निरन्तर किसानों के विरुद्ध जमींदार के हितों की रक्षा करती हैं तो जमींदार को भी उस व्यवस्था को ऐसे अवसर पर सहायता करने में अपनी हितरक्षा ही दिखती है।

लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन के संघर्ष में धीरे-धीरे चीजें बदलती हैं और स्वतंत्रता के निकट आते-आते किसान वर्ग की चेतना विकसित होने लगी है। बड़े सरकार के निजी नौकर पेंगा का पुत्र चतुरी गांव के स्कूल में पढ़कर और एक कांग्रेसी नेता के साथ रहकर यह समझने लगा है कि किसानों के हितों की रक्षा कांग्रेस नही कर सकती और न ही जमींदारों के प्रभुत्व को चुनौती दी जा सकती है। यह चुनौती किसानों के संगठित शक्ति और प्रयास द्वारा ही सम्भव है कारण स्पष्ट है-" जमींदार आखिर कब तक रोके रहेगा खुद तो इतने खेतों को जोत-बो सकता नहीं और अगर ऐसा करने पर उतारू हो जाए, तो जोताई-बोआई वह किनसे कराएगा? खुद हल की मुठिया थामने की शक्ति उसमें कहां है? उसकी ताकत तो हमीं हैं। हमारी ही ताकत तो उसकी है।"

चतुरी के इन विचारों से गांव के किसानों में संगठन की भावना जागृत होती है और कुछ ही दिनों में अनेक उत्साही नवयुवक सक्रिय हो उठते हैं। युवकों की यह सक्रियता और किसानों की विकसित होती हुई सामाजिक चेतना फौजी-भरती के कार्यक्रम में बाधा उत्पन्न करने लगती है। इस कारण पुलिस द्वारा चतुरी सहित अनेक युवक नेताओं को गिरफ्तार कर लिया जाता है। यद्यपि किसानों का यह संघर्ष अन्त तक चलता है। चतुरी के दूसरे साथी पुलिस के विरूद्ध जुलूस निकालते हैं, जलसे करते हैं किन्तु व्यवस्था का दमनचक्र इतना शक्तिशाली है, कि शासक वर्ग के अन्यायपूर्ण कार्य बाधित नहीं हो पाते। उपन्यास के अन्त में बड़े सरकार को नियति का एक आकस्मिक आघात लगता है वह आघात अनायास ही उन आने वाले वास्तविक सामाजिक प्रहारों का प्रतीक बन जाता है जिनका सामना देर-सबेर शासक वर्ग को करना ही पड़ता है।

'बाँदी' का घटनाक्रम सामान्य सन्दर्भ के बीच चलता है। बड़े सरकार का विवाह किसी ताल्लुकेदार की पुत्री पानकुमारी से होता है तथा पानकुमारी की सहेली मुंदरी, विवाह के बाद उसके साथ ही ससुराल भेज दी गई है। यह मुंदरी जो पानकुमारी की बाँदी के रूप में उसके साथ रहती है असल में वह पानकुमारी के पिता की ही अवैध संतान है। बड़े सरकार की हवेली में रहने वाली अनेक युवा स्त्रियों की नियति भी बांदी बन कर रहने की ही है।

बड़े सरकार का जीवन सुखमय नहीं था। उनकी पत्नी पानकुमारी विवाह पूर्व से ही रंजन नामक एक नवयुवक से प्रेम करती थी। वह नवयुवक बड़े सरकार की अनुपस्थिति में बीस पच्चीस दिन हवेली में भी रहा। यात्रा से अचानक लौटने पर जब बड़े सरकार ने रंजन को घर पर देखा और

जब उन्हें यह पता चला कि यह वास्तव में पानकुमारी का प्रेमी है तो उन्होंने पहलवान की सहायता से रंजन की हत्या करा दी। यहां यह भी द्रष्टव्य है कि यदि अचानक बड़े सरकार यात्रा से न लौट आते तो पानकुमारी, रंजन, मुंदरी, गुप्त रूप से हवेली छोड़कर चले जाते। इस प्रकार के बंद और दमनकारी वातावरण में मानव विरोध को व्यंजित करने वाली प्रेम की यह घटना केन्द्रीय होने के बावजूद अनेकी नहीं है। मुंदरी, पेंगा से प्रेम करती है और उसके साथ घर बसाना चाहती है। पानकुमारी मुंदरी की सहायता करने को तैयार हो जाती है। बिना यह जाने कि बाँदी को स्वतंत्र घर बसाना हवेली के नियमों के विरूद्ध है। इस बात का रहस्योदघाटन होने पर सजा रूप में पेंगा को सदैव के लिए गांव छोड़कर जाना पड़ता है। मुदरी की पुत्री सुनरी और सरकार के पुत्र लल्लन का प्रेम सबसे अधिक भयानक है क्योंकि भोली भाली सुनरी लल्लन जैसे हृदयहीन व्यक्ति के आचरण को एक प्रेमी का आचरण मान लेती है और उससे विवाह करने का स्वप्न देखने लगती है। लल्लन किसी तेजी में नहीं था उसे अपने कमरे में प्रायः छेड़ता था और छेड़कर ही संतुष्ट हो जाता था। "काफी खेला-खाया युवक लल्लन भेड़िए की तरह शिकार पर मौका मिलते ही झपट पड़ने का कायल था। बिल्ली की तरह खूब खेल कर, जी बहलाकर शिकार मारने में उसे मजा आता था। और फिर सुनरी तो उसके घर की मुर्गी है, कोई जंगल का परिंदा थोड़े ही है कि पलखत पड़ते ही फुर्र से गायब । कोई जल्दी की बात नहीं।"

उपन्यास को पढ़ते समय इस विडंबना का अहसास गहरा होता है कि पानकुमारी के पिता ने अपनी पुत्री का विवाह रंजन से इसलिए नहीं किया कि युवक युवतियाँ स्वयं अपना जीवन साथी चुन लें यह जमींदार घराने की परम्परा के विरूद्ध है। खुद अनैतिक यौन-जीवन जीने वाले अपनी वैध पुत्री पानकुमारी के लिए अवैध पुत्री मुंदरी की खुशियों का गला घोंटने वाले ताल्लुकेदार अपने घराने की नकली सामाजिक परम्परा को बेटे-बेटियों की खुशियों से भी ऊपर मानते हैं और इस परम्परा के निर्वाह के लिए किसी का भी गला घोंट सकते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सामंती मूल्यों और परम्पराओं के सामने व्यक्ति विशेषतः नारी वर्ग के हितों का तथा उनकी भावनाओं का कोई अर्थ नहीं है। एक तरह से सामंती मूल्य व्यक्ति की स्वतंत्रता और मर्यादा के विरूद्ध तथा उनके लिए घातक है।

चूँकि सामंती शोषण के विरूद्ध सामाजिक संघर्ष की अभी केवल शुरूआत ही हुई है और निकट भविष्य में ऐसी कोई सम्भावना नहीं है कि जमींदारों, तालुकेदारों के स्वामित्व को कोई चुनौती मिलेगी, इसलिए भैरवजी इस बांदी उपन्यास में प्राकृतिक तथा मानवीय विरोध की ओर अतिरिक्त बल देने को बाध्य होते दिखलाई पड़ते हैं "मन के अन्दर सब स्वतंत्र होते हैं और कहीं जगह न पाकर गुलाम के मन में ही स्वतंत्रता चुपके-चुपके सिमटी सिकुड़ी बैठी रहती हैं और बाहर निकालने के अवसर की ताक में सिर धुना करती है।"

यह सही है क्योंकि सामाजिक असमानता और वर्ग प्रभुत्व को कोई भी मनुष्य सहज रूप में स्वीकार नहीं करता, विशेषकर वह व्यक्ति जो शासक वर्ग में पतनशील व्यवहार को देखता है और उसके शोषण तथा नियत्रंण को झेलता है। पानकुमारी, रंजन और मुंदरी का हवेली से भाग जाने की योजना अप्रत्यक्ष रूप से सामंती मूल्यों को चुनौती है। ग्रामीण जीवन के वातावरण में किसानों के शोषक बड़े सरकार को रंजन का प्रेम एक गहरी चोट करता है। रंजन की हत्या करने के समय बड़े सरकार एकक्षण के लिए सहम जाते हैं कि उनके और रंजन के व्यक्तित्व में अंतर केवल मात्रा का न होकर गुण का है।

उपन्यास का अन्त जिस घटना से होता है वह जीवन (रंजन) और मृत्यु (बड़े सरकार) के

अनवरत संघर्ष का ही आशावादी रूप है। उपन्यास के वे अंश काफी महत्वपूर्ण हैं जब बड़े सरकार को यह पता चलता है कि लल्लन उनका पुत्र न होकर रंजन का पुत्र है। इस बात से उन्हें ऐसा आघात लगता है कि बड़े सरकार बेंगा की उपस्थिति में अपने कमरे में बंद होकर शराब के सहारे 'आध्यात्मिक क्षणों को जी रहे हैं और मानसिक यंत्रणा भोग रहे हैं। 'आध्यात्मिक दौर' के इस प्रसंग को लेखक ने जिस व्यंग्यपूर्ण स्वर में प्रस्तुत किया है वह उपन्यास के पूरे घटना क्रम का चरम बिन्दु है।उदाहरण के लिए एक बड़ा पैग जमा कर बड़े सरकार लेते तो अचानक उनको एक आध्यात्मिक दौरा पड़ गया, वह राजा भर्तृहरि की तरह एक ही दिशा में सोचने लगे, यह औरत जाति कितनी बेवफा और चालाक होती है। फिर एक ऐसी लहर उठी, कि मन में आया, इस कपटी संसार का त्याग कर देना चाहिए। साधु बन कर जीवन बिताना तो मुश्किल है, आत्महत्या क्यों न कर ली जाए। आध्यात्मिक क्षणों की कुछ खूबी ही ऐसी होती है। खने में रोना, खने में हँसना और होते-होते उन्हें मुंदरी की याद आई और सुनरी की और बड़े सरकार अपने आध्यात्मिक दौरे में पड़े यह नेक इरादा कर रहे थे कि अपनी सब कुछ सुनरी के नाम लिख दूं, तो कैसा रहे? दुनिया भी क्या याद रखेगी कि एक था जमींदार जिसने लौंड़ी को रानी बना दिया। रानी और बड़े सरकार फिर रो पड़े। सुनरी की माँ मुंदरी को वह हरगिज रानी नहीं बनाएँगी! वह नमकहराम है उसी की तो यह सब कारस्तानी है! तब वे उस आध्यात्मिक क्षण में पारे की तरह बिल्कुल चोटी पर पहुँच गए। बड़े सरकार बेहाल हो उठे। ऑखों में आँसू भर कर बेंगा का हाथ पकड़ कर वह बोले-तुम मेरे भाई-बाप हो! मैं तुम्हारा बच्चा हूँ। वह फूट-फूट कर रो पड़े।" इस मनः स्थिति के माध्यम से बड़े सरकार की मानसिक यंत्रणा का पता तो चलता ही है साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उनके पूरे जीवन मूल्य उनका व्यक्तित्व कितना घृणित और तुच्छ है।

इस प्रकार बाँदी में लेखक ने एक ओर सीधे सामाजिक संघर्ष की प्रक्रिया का चित्र प्रस्तुत करने के लिए उन नायकों की ओर ध्यान खींचा है जो कल के समाज निर्माता हैं तो दूसरी ओर प्रतीक-कथा के माध्यम से सामंती जीवन परम्परा पर स्वाभाविक एवं मूल मानवीय भावनाओं की विजय दिखलाकर लल्लन के हाथों बड़े सरकार को करारी मात दी है। अंत में यह प्रतीक कथा बड़े स्वाभाविक रूप से वास्तविकता के धरातल पर उतर आती है। जब लल्लन अपने प्रेम के लिए मां की स्वीकृति लेकर, बदमिया और सुनरी का उपयुक्त युवक के साथ विवाह का निर्णय लेकर, और माँ तथा मुनरी को इस वातावरण से बाहर निकालने की निश्चित योजना बनाकर फौज की नौकरी पर जाता है। इस प्रकार यह उपन्यास अंचल विशेष में निहित ग्रामीण यथार्थ को चित्रित करने वाले महत्वपूर्ण उपन्यासों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

सन्दर्भ विवरण

1. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, पृष्ठ सं.- 95
2. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ सं.-49
3. भैरवप्रसाद गुप्त, बांदी, पृष्ठ सं.-34
4. भैरवप्रसाद गुप्त, बांदी, पृष्ठ सं.- 53
5. भैरवप्रसाद गुप्त, बांदी, पृष्ठ सं.- 61
6. भैरवप्रसाद गुप्त, बांदी, पृष्ठ सं.- 58